शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

अज्ञेय के लेखन में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अवधारणा

डॉ० प्रियदर्शनी
'एसिटेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं भारत अध्ययन विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

अज्ञेय के लेखन में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अवधारणा

- डॉ० प्रियदर्शनी

हिन्दी के प्रख्यात लेखक सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' के ऊपर सदैव व्यक्तिवादी लेखक होने का आरोप लगता रहा है। उनके वैचारिक दर्शन को अनेक आलोचकों द्वारा समाज विरोधी सिद्ध किया जाता रहा है। प्रस्तुत शोध आलेख अज्ञेय के वैचारिक दर्शन की सम्यक समीक्षा प्रस्तुत करता है।

विषय संकेतः- अज्ञेय, व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता, समाजवाद, समष्टिवाद

दुःख सबको माँजता है
और चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने
किन्तु जिनको माँजता है .....
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।''

ये उदाहरण 'नदी के द्वीप' में निहित जीवन-दर्शन को सांकेतित करते हैं। अज्ञेय दर्द में भी जीवन में आस्था के कवि हैं। अज्ञेय के 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' में यह आस्था ही अज्ञेय के लेखन की आत्मा भी है एवं उसका अनूठापन थी।

नन्दकिशोर आचार्य 'अज्ञेय : संचयिता' की भूमिका में लिखते है कि ''अज्ञेय हिन्दी के बहुआयामी व पुरोगामी लेखक हैं। एक लेखक के रूप में उनका विकास-काल भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के चरमोत्कर्ष का समय है और साथ ही पुनर्जागरण का वह दौर भी, जिसमें नयी स्थितियों की सटीक पहचान और उनके द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने का आत्मविश्वास भी अर्जित होता दिखाई देता है। समय को एक नये मोड़ देने वाले लेखक में समय की वास्तविकता का बोध अनिवार्य है। इसलिए यह स्वाभाविक ही लगता है कि जहाँ स्वंत्रता की बहुआयामी तलाश अज्ञेय के रचना संसार का केन्द्रीय सरोकार है, वहीं एक लेखक के रूप में नयी सामाजिक परिस्थितियों और नयी सम्प्रेषण परिस्थितियों के दबाव को भी पूरा एहसास उन्हें है।''[1]

अज्ञेय के लिए स्वतंत्रता, कोई निजी आग्रह नहीं बल्कि एक मूल्य है और मूल्य होने के नाते वह अधिकार के साथ-ही-साथ सहज ही एक उत्तरदायित्व भी हो जाता है। तभी तो अज्ञेय के लिए मानव के स्वाधीन बनाने में कितना योग देती है। अज्ञेय के स्वातंत्र्य की अवधारणा में व्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रबल आग्रह है। अज्ञेय मानते हैं कि- ''मानव अपूर्वानुमेय है, क्योंकि वह सर्जक है और इस अपूर्वानुमेयता में ही उसका स्वाधीन होना निहित है, लेकिन आत्म-चेतन होना भी मनुष्य का स्वभाव है, और आत्मचेतन होना केवल व्यक्ति होने तक ही सीमित नहीं रह सकता। उसका समाजचेतन होना भी जरूरी है। उदाहरण के लिए अज्ञेय कहते हैं कि जैसे 'मैं' 'मैं' हूँ, पर मेरे होने की चेतना में ही मेरा एक व्यक्ति होना, और मेरा एक समाज का अंग होना दोनों निहित है। उस समाज का अंग होना जिसके कारण मेरी स्वाधीनता परिधि में घिरती नहीं बल्कि अभिव्यक्ति का क्षेत्र और आधार पाती है।''[2]

अज्ञेय यहाँ स्वतंत्रता और सामाजिकता के द्वंद्व का एक मौलिक समाधान प्रस्तुत करते हैं। कई विचारकों के लिए जहाँ समाज व्यक्ति की स्वतंत्रता में अनिवार्यतः बाधक है और इसीलिए-व्यक्ति और समाज' दोनों में एक अनिवार्य तनाव बना रहता है, एक संघर्ष बना रहता है, वहीं अज्ञेय के लिए समाज स्वतंत्रता की साधना-भूमि है। अज्ञेय की दृष्टि में स्वतंत्र होने का अर्थ समाज से स्वतंत्र होना नहीं बल्कि समाज में स्वतंत्रता नितांत मेरी नहीं है, बल्कि 'ममेतर' की स्वतंत्रता है, दूसरे के मुकुर में मैं अपनी स्वतंत्रता को और स्वयं को पहचानता हूँ।''[3] यह मानव-व्यक्ति के विवेक की पहुँच की पराकाष्ठा है। इस 'ममेतर' की स्वतंत्रता के पक्ष में अज्ञेय जो तर्क देते हैं वही स्वतंत्रता को जैविक प्रेरणा से उठाकर एक नैतिक मूल्य की हैसियत में प्रतिष्ठित कर देता है। अज्ञेय कहते हैं कि - ''दूसरे की स्वतंत्रता का आत्म-चेतन दावा ही स्वतंत्रता का वास्तविक दावा है।

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

अज्ञेय के लेखन में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अवधारणा

डॉ० प्रियदर्शनी
'एसिटेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं भारत अध्ययन विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

'मैं' के अधिकार का दावा तो एक जैविक प्रेरणा है। ममेतर का दावा ही मनुष्यता की पहचान हैं यह पहचान और उसका स्वीकार आत्म-चेतन व्यक्ति ही कर सकता है, और यह आत्मचेतन प्रत्याभिज्ञा ही मानव को आत्यंतिक रूप से पशु-जगत् से अलग करती है और उसे मानवत्व देती है।''[4]

अज्ञेय स्वतंत्रता का विस्तार सामाजिकता में देखते हैं। इसलिए जब अज्ञेय स्वतंत्रता को आधारभूत मूल्य के रूप में प्रस्तावित करते हैं तो केवल व्यक्ति की ही नहीं पूरे समाज की स्वतंत्रता की बात करते हैं, जिसकी कसौटी समाज का प्रत्येक व्यक्ति है। कार्ल मार्क्स ने भी यही कहा है कि 'प्रत्येक का स्वतंत्र विकास सबके स्वतंत्र विकास की अनिवार्य शर्त है।'' वहीं अज्ञेय के अनुसार भी ''व्यक्ति-ईकाई की अपनी स्वतंत्रता के दावे का कोई अर्थ नहीं रह जाता, यह दावा तभी सार्थक होता है जब वह अपनी स्वतंत्रता का न होकर दूसरे की स्वतंत्रता का हो।''[5]

अज्ञेय राष्ट्र, दल, मतवाद, संप्रदाय अर्थात् किसी भी लक्ष्य के नाम पर स्वतंत्रता का दमन करने का विरोध करते हैं और इसीलिए व्यक्ति की स्वतंत्रता को सामाजिक स्वतंत्रता की कसौटी उसी प्रकार मानते हैं जिस प्रकार सामाजिकता को स्वतंत्रता की। अज्ञेय के लेखन की स्वतंत्रता और स्वयं अज्ञेय की स्वातंत्र्य की अवधारणा समाज पर ही आकर समाप्त होती है, स्वतंत्रता की माँग निजी होने के साथ ही साथ सामाजिक भी है, यह समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि स्वतंत्रता, मम और ममेतर की पारस्परिकता के समग्र परिवेश के साथ एक सृजनात्मक रिश्ते का बोध, इन सभी तत्वों की अनुभूति, अज्ञेय की रचनाओं में प्रचुरता से मिलती है। अज्ञेय के लेखन में 'स्वातंत्र्य की अवधारणा' के संबंध में निर्मल वर्मा अपने एक लेख में लिखते हैं कि - ''अज्ञेय की अनेक सीमाएँ थी, किंतु आखिर तक उनका स्वाधीनता बोध अप्रतिम व अक्षुण्ण रहा। अज्ञेय का व्यक्तित्व सहज रूप से सिमटा हुआ था। किंतु अपने स्वाधीनता बोध के कारण ही वे बार-बार उसमें अतिक्रमण कर लेते थे। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि एक लेखक का स्वाधीनता बोध, जो हर समय, हर देश में लेखनधर्म को बुनियादी बनाता रहा? एक स्वाधीन लेखक स्वत: अपनी स्वाधीनता के कारण श्रेष्ठ नहीं हो जाता, किन्तु श्रेष्ठता का दर्जा हासिल करने के लिए अपने भीतर स्वाधीनता को बोध होना, लेखक होने की अनिवार्य शर्त बन जाता है। शायद एक चेक और पोलिश लेखक स्वतंत्रता के इस मूल्य को एक हिंदी लेखक से कहीं अधिक गहराई और पीड़ा से महसूस करता है। जिसे हम एक अपेक्षाकृत खुले समाज में विरोध और वितृष्णा से देखते हैं। एक लेखक को गाँधीवादी या मार्क्सवादी मानने में हमें कोई खास दिक्कत नहीं होती, लेकिन एक सर्वथा स्वाधीन लेखक जो बाहर के किसी मत अथवा दर्शन को नहीं, स्वयं अपने विवेक को कसौटी मानकर चलता ह- यह बात हम स्वीकार नहीं कर पाते। ठीक इसी धारणा का शिकार अज्ञेय को होना पड़ा। उनका स्वभावगत, स्वाधीन एवं स्वतंत्र विवेक हमारी गुलाम मानसिकता में कहीं फिट नहीं हो पाता था। गुलामी एक सहज अवस्था है। जबकि स्वतंत्रता को अर्जित करने के लिए असीम संघर्ष करना पडता है। इसलिए जब हम बड़े शहरों में आते हैं तो आजादी से अपनी संस्कारगत गुलामी की जगह किसी पार्टी या विचारधारा या मतवाद का ठप्पा लगाने मात्र से आत्मा के अंदर धंसी गुलामी से मुक्ति नहीं मिल सकती। इसलिए जब हम किसी ऐसे व्यक्ति का सामना करते हैं, जो अपने संस्कारों में सहज रूप से स्वाधीन है अथवा स्वतंत्र है, तो वह व्यक्ति सीधा हमारे क्रोध और निंदा का शिकार बन जाता है, उस व्यक्ति की स्वतंत्र मेघा हर क्षण हमें अपनी गुलाम मानसिकता की याद दिलाती है। हम स्वयं स्वाधीन होने की बजाय उसे गुलामी में घसीटना चाहते हैं- और जब वह व्यक्ति इसके लिए तैयार नहीं होता तो हम उसे बड़ी सरलता से विद्रोही, पथभ्रष्ट, बेशर्म और न जाने क्या-क्या नाम देकर दोबारा अपनी गुलामी की खोह में शरण लेकर अपनी कचोटती आत्मा से मुक्ति पा लेते हैं।''[6]

अज्ञेय के स्वाधीनता का बोध अमूर्त नहीं था, वह सोधे-सादे सृजन कर्म की उन समस्याओं से जुड़ा था जिनसे आज का हर संवेदनशील लेखक जूझता है। अज्ञेय ने अपने हर सृजन में स्वतंत्रता ली। मनुष्य की स्वतंत्रता के साथ ही साथ वह सौंदर्य के प्राचीन उपमानों को भी बड़ी मासुमियत से तोड़ते हैं और बड़ी स्वतंत्रता से उनकी जगह नये उपमानों व प्रतीकों को दे देते है। उदाहरण के लिए उनकी कविता 'कलगी बाजरे की' को ही ले

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly
Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

अज्ञेय के लेखन में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अवधारणा

डॉ० प्रियदर्शनी
'एसिटेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं भारत अध्ययन विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद

www.shodh.net
Web Portal of Humanity & Social Science Research

''अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका अब नहीं कहता या शरद के भोर की नयी न्हायी कुंई
टटकी कली चम्पे की वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है ...
या
कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही
ये उपमान मैले हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों से कर गए कूच ....।''

इस कविता में कवि ने बड़े ही कम शब्दों में काव्य की बंधी एवं सधी परिपाटी से मुक्ति की बात की है। यहाँ स्वतंत्रता है- साधारण मनुष्य के साधारण प्रेम की, साधारण अभिव्यक्ति की। प्रेम प्रदर्शन एवं सौंदर्य-वर्णन के लिए नख-शिख वर्णन, बारहमासा, चाँद, तारे, नदी, झरने, परिधान और मुलायमियत के सभी बंधनों से आजादी की मांग करती हुई यह कविता कहीं से अपने मर्म को कहने में कम नहीं पड़ती बल्कि अपनो साधारण अभिव्यक्ति से ही सीधे पाठकों के जेहन में उतर जाती है।

ऐसा नहीं है कि अज्ञेय सिर्फ समाज और निजी स्वातंत्र्य की ही बात करते हैं बल्कि इसी समाज या यूँ कहें कि स्वतंत्र समाज में सदियों से 'पराधीन' स्त्री के स्वातंत्र्य पर भी अपना रूख एक-दम साफ रखते हैं। अज्ञेय स्त्री के व्यक्तित्व की स्वतंत्र प्रतिष्ठा चाहते हैं। उसे सदैव किसी रिश्ते में बांध कर नहीं देखना चाहते। अपने एक संग्रह 'केंद्र और परिधि' में स्त्री-स्वातंत्र्य के संदर्भ में उन्होंने बड़ी मार्मिक टिप्पणी की है कि- ''आज यह पहचान अनिवार्य हो गयी है स्त्री को माँ, बहन, बहू, बेटी, इत्यादि मानना ऐसा वास्तव में उसके निजी स्वतंत्र व्यक्तित्व को नकारना है। स्त्री को हमेशा रिश्ते के किसी पुरूष के माध्यम से देखना समाज को पुरुष संचालित मानने का ही विस्तार है। क्या स्त्री अपने-आप में कुछ नहीं है? उसका अपना व्यक्तित्व कुछ नहीं है? उसके लिए जीवन केवल कर्मों ओर कर्तव्यों का एक 'समूह' है? एक 'रोल' है, जो इस दृष्टि से निर्धारित होता है। और क्योंकि इस तरह पुरूष समाज बड़ी आसानी से नारी के व्यक्तित्व की सत्ता को ही नकार जाता है। इसलिए आज उस कथित, स्त्री पूजा-भाव' का ही कोई अर्थ नहीं रहता जिस समाज में नारी को व्यक्तित्व ही नहीं दिया जाता, उस नारी की पूजा का अर्थ 'स्वार्थ-पूजा' या 'पेट-पूजा' वाली पूजा से अधिक नहीं रहता। सच्चे अर्थ में पूज्य वही स्त्री हो सकती है, जिसके व्यक्तित्व को समाज ने एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया।''[7]

यह बहुत बताने की आवश्यकता नहीं है कि सभी प्रकार के स्त्री-विमर्श का केंद्रीय प्रयोजन मूलत: स्त्री स्वतंत्र व्यक्तित्व की, उसकी स्वतंत्र सत्ता की प्रतिष्ठा ही है। उससे जुड़े हुए सभी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सवाल उसी एक उद्देश्य के विविध पहलू हैं। अज्ञेय एक गंभीर सर्जक और विचारक हैं। उनके भीतर 'सांस्कृतिक' और 'आधुनिक', 'व्यक्तिवाद' और 'समाजवाद' मिलकर एक समन्वित दृष्टि अन्वेषित करते हैं। इसी संदर्भ में उन्होंने 'मम' और 'ममेतर' शब्दों की सर्जना की है। ये शब्द मोटे तौर पर 'व्यक्ति' और 'समाज' या 'अहं' या 'इदं' को व्यक्त करते प्रतीत होते हैं। परंतु अज्ञेय के यहाँ इनके मौलिक अर्थ हैं और इनके पारस्पिरिक संबंधों में एक अनूठापन है। 'मम' अज्ञेय के यहाँ 'मेरा' अर्थात् - मेरे हिस्से का संसार, मेरे हिस्से का सच, मेरे हिस्से का समय आदि है। अज्ञेय का 'मम' समाज में तिरोहित व्यक्ति भी नहीं है, लेकिन अपनी पूरी अस्मिता सहित समाज की कतार में शामिल भी है। वह समपर्ण तो करता है, लेकिन उसका समपर्ण पूर्ण विसर्जित होने वाला नहीं है। अज्ञेय अपने व्यक्ति और आत्म का निरंतर परीक्षण और परिष्कार करते रहते हैं। अंत में शायद वो इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानवीय स्वतंत्रता को समाज और संस्कृति से काटकर नहीं देखा जा सकता है। कटने पर तो वह 'अकेली स्वाधीनता' होगी और अकेला हो जाना स्वाधीन होना तो कतई नहीं होता और अज्ञेय को ऐसी स्वतंत्रता मान्य नहीं थी। अज्ञेय की स्वाधीनता और उस स्वाधीनता में देश-काल, परिवेश की भूमिका की काव्यात्मक अभिव्यक्ति उनकी कविता 'नदी के द्वीप' व 'दीप

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly
Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

अज्ञेय के लेखन में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अवधारणा

डॉ० प्रियदर्शनी
'एसिटेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं भारत अध्ययन विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद

www.shodh.net
Web Portal of Humanity & Social Science Research

अकेला में' बड़ी ही कलात्मकता के साथ हुई है। कविता 'नदी के द्वीप' में अज्ञेय का 'मम' नदी का द्वीप है, परंतु 'वह' (कविता का) 'वह' देश और काल से राग या स्नेह से जुड़ा है। द्वीप यदि व्यक्ति है तो वृहत् भूखंड देश है, जिसे वे पितर की गरिमा देते हैं। नदी जो द्वीप को रचती संवारती है- 'वहीं' उसे देश से जोड़ती भी हैं और अलग भी करती है। वह काल प्रवाह की सूचक है और द्वीप की माँ है। कविता में उद्धृत भी है कि –

''माँ है वह। है, इसी से हम बने।'

'नदी के द्वीप' कविता को यदि 'दीप अकेला' कविता के साथ पढ़ा जाए तो अज्ञेय की व्यक्ति और सर्जक दृष्टि की पुष्टि होती चलती है। 'नदी के द्वीप' कविता में पंक्तियाँ हैं।

'स्थिर समर्पण है हमारा।
हम सदा से द्वीप स्रोतस्विनी के .... ।'

और वहीं दीप अकेला' कविता में दीप अकेला भी है और स्नेह भरा भी है जो पंक्ति, शक्ति, और भक्ति को स्वयं अपने को देने की कामना करता है। द्वीप और दीप दोनो ही में यह तटस्थता और समर्पण क्यों है, इसका अर्थ 'नदी के द्वीप' कविता में और खुलता है –

'बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं
और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी धार बन सकते है क्या?
(रित बन कर हम तनिक सलिल को गँदा ही करेंगे)
द्वीप हैं हम
यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है
हम नदी के पुत्र हैं, बैठे नदी के क्रोड में
वह वृद भूखंड से हमको मिलाती है
और वह भूखंड अपना पितर है।''

व्यक्तित्व या अस्मिता बोध और काल प्रवाह से प्रतिश्रुति आत्म विश्वास को जन्म देती है। जो एक ओर पर निर्भरता या दूसरे में (भले ही समाज में ही सही) तिरोहित होने में नहीं होती, ओर न हीं उस दूसरे के अनुपस्थिति होने में होती है। भला पात्र के बिना तरलता को कौन धारण करेगा? समष्टि, समाज या ममेतर ही पात्र है। इसलिए द्वीप निराश नहीं है, उसमें आत्मविश्वास है: कभी यदि बह भी गए तो –

'फिर जमेंगे कहीं फिर खड़ा होगा, नए व्यक्तित्व का आकार ..।

आधुनिक युग में जिस व्यक्तवाद से अज्ञेय का सामना था – वह अस्तित्ववाद' था। अज्ञेय ने एक आर सात्र के अस्त्तित्ववाद को नकारा तो दूसरी ओर कीर्के गार्द और यास्पर्स के अस्तित्ववाद से प्रभावित भी हुए वे कीर्के गार्द और यास्पार्स के 'ईसाई अस्त्तित्ववाद' को स्वीकार करते हैं। किसी धार्मिकता के कारण नहीं, वरन् 'वरण की स्वाधीनता' के कारण अपने संबंध में आरापित अस्त्विवादी धारणाओं से क्षुब्ध अज्ञेय कहते है कि ''हिन्दी के परिश्रम विरोधी समाजवादी आलोचक मुझको भी आस्तित्ववाद और सार्त्र का अनुयायी कह देते हैं। उनके सम्मुख तो यह निवेदन करना भी निष्प्रयोजन है कि सात्र का साहित्यिक अस्त्विवाद मेरे लिए आकर्षण कभी भो नहीं रहा है। यद्यपि मैंने पढ़ना समझना उसे भी चाहा। जैसे अन्य साहित्यिक सिद्धांतो को समझना चाहता रहा। लेकिन उन दो प्रवृत्तियों में, जिन्हें ईसाई आस्तित्ववाद कहा जाता है, उनमें मेरी विशेष रूचि रही है।''[8] (अज्ञेय पुस्तक-आत्मपरक से)

(1) ईसाईयत की संघठित चर्च-प्रणाली' और (2) 'विकल्प की स्वाधीनता के द्वंद्वात्मक संबंध में ही दरअसल अस्त्विवादीवरण की स्वाधीनता रूपायित हुई। संभवत: इसीलिए सात्र की अपेक्षा कीर्के गार्द और यास्पर्स जैसे अस्तित्ववादी अज्ञेय की रूचि को विषय रहे। यास्पार्स की अस्त्वीय चिंता का मूल है-

'अभीष्टवरण के विकल्पों की स्वाधीनता' वे व्यक्ति ओर जगत के बीच संपर्क-संचार को अनिवार्य मानते हैं और जज्जन्य टकरावों को भी। यास्पार्स में संभवत: अज्ञेय ने अपनी सांस्कृतिक चेतना की अनुरूपता भी पायी और व्यक्ति की निजी सत्ता यानी 'मम' की स्वाधीनता भी। अज्ञेय की स्वातंत्र्य की अवधारणा को ओर

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

अज्ञेय के लेखन में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अवधारणा

डॉ० प्रियदर्शनी
'एसिटेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं भारत अध्ययन विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

समाज के महत्त्व को समझने के लिए ही अज्ञेय ने 'शेखर' जैसे पात्र की रचना की जिसका हुलिया भले ही अज्ञेय से मेल न खाता हो, परंतु विचारों में इतनी एकरूपता, इतनी एक सी सच्चाई है कि वह-निर्जीव पात्र सजीव लेखक' के मन का प्रतिबिंब बन जाता है। शेखर एक जीवनो उपन्यास की मूलभूत प्रेरणा क्रांतिकारी या विद्रोहात्मक है। उपन्यास में क्रांति और विद्रोह स्वयं उपन्यास के नायक का लक्ष्य है। यह शेखर की मनोवृत्ति नहीं उसका स्वतंत्र जीवन दर्शन है। शेखर: एक जीवनी की भूमिका में ही अज्ञेय लिखते है-

''शेखर कोई बड़ा आदमी नहीं है, वह अच्छा भी नहीं है, लेकिन वह मानवता के संचित अनुभव के प्रकाश में ईमानदारी से अपने आप को पहचानने की कोशिश कर रहा है। वह अच्छा संगी नहीं भी हो सकता है, लेकिन अंत तक उसके साथ चलने पर उसके प्रति आपके भाव कठोर नहीं होंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। और कौन जाने, आज के युग में जब हम, आप सभी संश्लिष्ट चरित्र है, तब आप पाएँगे कि आपके भीतर भी कहीं पर एक शेखर है, जो बड़ा नहीं, अच्छा भी नहीं, लेकिन जागरूक, स्वतंत्र और ईमादार है। घोर ईमानदार।''

शेखर की स्वतंत्रता की भावना प्रबल है। माँ-बाप, परिवार, समाज या शासन के विरोध में रहकर भी वह अपनी स्वायत्ता की रक्षा करता है। 'स्वंतत्रता' के लिए उसके अपने कुछ मूल्य हैं और उन मूल्यों के लिए शेखर सब कुछ छोड़ सकता है और बड़े से बड़ा संघर्ष कर सकता है। शेखर स्वयं अपने मूल्यों का निर्माता है और उनका रक्षक भी। वह आत्मान्वेषी है। शेखर में जो कमजोरियाँ है उन्हें भी वे बड़े Gudts के साथ स्वीकार करता है जैसा कि शेखर के संबंध में अज्ञेय खुद कहते हैं कि-

'वह एक जागरूक' आत्मा है और स्वतंत्रता की निर्धारित सीमा से भी ज्यादा स्वतंत्र है।'

अज्ञेय अपने दूसरे उपन्यास 'नदी के द्वीप' में अपने पात्रों को कहने, सुनने और विचार करने की भरपूर स्वतंत्रता देते है। नेमिचंद्र जैन ने 'नदी के द्वीप' उपन्यास को हिन्दी उपन्यास की महत्त्वपूर्ण रचनात्मक-उपलब्धियों में माना है- उनके अनुसार उपन्यास के रूप में न केवल उस प्रकार की कोई अन्य रचना हिंदी में नहीं है। बल्कि उतनी सूक्ष्मता, संवेदनशीलता ओर अनुभूतिगत प्रबलता से लिखी हुई चेतना को, सौंदर्य बोध को हिंदी गद्य की सूक्ष्म अभिव्यंजनात्मक शक्ति को, एक सर्वथा नया ही स्तर प्रदान करता है। ओर हिन्दी उपन्यास को पश्चिमी देशों के उपन्यास साहित्य के समकक्षी बना देता है।[9]

'नदी के द्वीप' व्यक्तिगत तथा निजी अनुभूतियों की गाथा है। जिनकी भाव-वस्तु, तीव्रता, गहनता, और एकाग्रता अनूठी है और सघनता लगभग काव्यात्मक है। यह प्रेम की उपलब्धि का उसकी प्रबल प्रौढ़ अनुभूति का उपन्यास है।

'नदी के द्वीप' उपन्यास का प्रेम ऐसा प्रम है जो वर्जनाओं से संतृप्त नही है, जो एकांत रूप में व्यक्तिनिष्ठ होकर भी कुंठित नहीं है। जिसमें समर्पण तथा पीड़ा भी है। साथ ही उसका अतिरक्त प्रतिफलन भी है। अज्ञेय ने सात्र के 'हेल इज अदर पीपल' के सिद्धांत के बरअक्स अपनी रचनाओं में धारणाओं में 'फ्रीडम इज अदर पीपल का सूत्र निरूपित किया है।

अपनी तीसरे उपन्यास 'अपने-अपने अजनबी' में इन्होंने स्वतंत्रता वरण और अकेलेपन की समस्या को न केवल पश्चिमी और भारतीय दृष्टि से उठाया है, बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि स्वातंत्रता की भौतिकवादी और अंहबद्ध अवधारणा के विपरीत इन्होंने इस उपन्यास में स्वतंत्रता के एक अहंमुक्त ओर आध्यात्मिक अनुभव का आख्यान प्रस्तुत किया है। उपन्यास की पात्र योके का अकेलापन, जो लेखक की दृष्टि में पश्चिमी अहंग्रस्त व्यक्ति का अकेलापन है। जो अंत में आत्मघाती सिद्ध होता है। जबकि उपन्यास की दूसरी पात्र सेल्मा में एक आध्यात्मिक अर्न्तदृष्टि जागृत होती है। जिसके कारण मृत्यु को स्वीकार करते हुए भी वह मृत्यु से आतंकित नहीं होती। वह योके की अहंबद्ध स्वतंत्रता को भी एक बन्धन मानती हुई स्वतंत्रता की एक नयी सी व्याख्या करती है, कि 'न तो हम अकेले है, न हम स्वतंत्र हैं। बल्कि अकेले नहीं है और न ही, हो सकते हैं। इसलिए स्वतंत्र भी नहीं हैं। इसीलिए चुनने और फैसला करने का अधिकार हमारा नहीं है। मैंने तुम्हें बताया था कि मैं चाहती थी कि मैं अकेली मरूँ लेकिन क्या यह निश्चय करना मेरे बस का था? क्या मैं अपनी मनपसंद परिस्थिति चुन सकी? ओर तुम क्या स्वतंत्र हो कि मुझे करती हुई न देखे इस प्रकार की सभी स्वतंत्रताओं की कल्पनाएँ निरा अहंकार है- और उस स्वतंत्रता को छोड़कर कोई दूसरी स्वतंत्रता नहीं है।''

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly
Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

अज्ञेय के लेखन में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अवधारणा

डॉ० प्रियदर्शनी
'एसिटेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं भारत अध्ययन विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद

www.shodh.net
Web Portal of Humanity & Social Science Research

अन्तिम पंक्तियों में यह स्पष्ट कर देती है कि 'सेल्मा: अहंकार से स्वतंत्र है, इसलिए स्थितियों को स्वीकार करते हुए भी उन स्थितियों से आतंकित नहीं है। कहा जा सकता है कि अज्ञेय के सभी प्रात्र प्राय: चिंतनशील है। जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के प्रति विशिष्ट दृष्टि रखते हैं और कुछ मूल्यवान नैतिक प्रश्नों से जूझते भी है।

अज्ञेय के स्वतंत्र मन को शब्द की सीमा में विभिन्न निर्धारित करना कठिन है। अज्ञेय के भीतर अहंकारी मन का मौन ही नही बल्कि उनके एकाकी जीवन का सच है –

अज्ञेय ने स्वयं अपनी एक कविता में कहा है –

मैं सभी ओर से खुला हूँ
वनसा–वनसा अपने में बंद हूँ
शब्द में मेरी समाई न होगी
मैं सन्नाटे का छन्द हूं।''

अज्ञेय की स्वयं को परिभाषित करने की, स्वयं को पाने, खोजने की जद्दोजहद उनके उपन्यास शेखर एक जीवनी में कई जगहों पर देखने को मिलती है। अपनी आत्मान्वेषी प्रवृत्ति को शब्दों में अज्ञेय कुछ इस तरह कहते हैं–

'जब तक पा नहीं लूँगा अपने
से इतर ..... अपने को
कैसे होगी,
मुझे अपनी भी पहचान।''

अज्ञेय को उनके वित्व कर्म, कहानी लेखन, और उपन्यासों से जितनी सराहना मिली उतनी ही आलोचना थी उनके हिस्से आयी। डॉ0 कृष्ण दत्त पालीवाल ने अपनी पुस्तक 'अज्ञेय' कवि कर्म का संकट' में लिखते हैं ''कैसा दुर्भाग्य है कि हिंदी आलोचना अज्ञेय को विदेशी नकलची ही सिद्ध करती रही। अथवा व्यक्ति 'स्वातंत्र्यवाद का समर्थक कहकर नीच कलावादी सिद्ध करती रही। उन्हें परम्परा, भारतीयता, भारतीय आधुनिकता, नवीन प्रयोगधर्मिता शब्द का शब्द का सच्चा पारखी सम्पूर्ण अर्थ में सांस्कृतिक अस्मिता और जातीय स्मृति से जोड़कर समझने में असमर्थ रही।''[10]

अज्ञेय अपने ऊपर की गई इन आलोचनाओं का जवाब अपनी ही एक कविता के माध्यम से बड़ी शालीनता से देते है। कि–

जो पुल बनायेंगे
वे अनिवार्यत:
पीछे रह जाएंगे
सेनाएं हो जाऐंगी पार
मारे जाऐंगे रावण
जयी होंगे राम
जो निर्माता रहे
वो इतिहास में बंदर कहलाऐंगे।

अज्ञेय ने जीवनपर्यंत किसी विचाराधारा की गुलामी को स्वीकार नहीं किया बल्कि अपने संबंध में यह स्वीकार किया कि

''मैं वह धनु हूँ
जिसे साधने में प्रत्यचा टूट गयी है।''

इस टूटी प्रत्यंचा वाले धनु ने अपने स्वाभिमान को कभी झुकने नहीं दिया। न किसी कि स्वतंत्रता को बांधा, न अपनी स्वातंत्रता को बंधने दिया।

अज्ञेय के लेखन के कई पहलू हैं। कभी वह मानव को शेखर के माध्यम से टटोलते है, तो कहीं रेखा के माध्यम से स्त्री स्वातंत्र्य और मर्यादा की एक ताजी नयी बुनियादी रखत हैं। वहीं वह गैंग्रीन जैसी कहानियाँ

शोध संचयन SHODH SANCHAYAN

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly
Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

अज्ञेय के लेखन में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अवधारणा

डॉ० प्रियदर्शनी
'एसिटेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं भारत अध्ययन विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद

www.shodh.net
Web Portal of Humanity & Social Science Research

लिखकर मध्यवर्ग में जीने के नाम पर हर दिन धीरे-धीरे मरते परिवारों की ओर संकेत देते हैं और कहीं 'शरणदाता' जैसी कहानियों को लिखकर देश के विभाजन से उपजी कड़ुवाहट का स्वाद बताने से भी नहीं चुकते। कभी वे अपने कल्पनाओं की भूमि पहाड़ चुनते हैं तो कभी युद्ध का मैदान। यह अज्ञेय के लेखन की विविधता ही तो है जिसमें नदियाँ, वन, तरू, जुगनू, पहाड़, मनुष्य, घर, प्रेमी, पति, रोग, संताप, द्वेष आत्म बोध, मुक्तता, स्वतंत्रता और भी बहुत कुछ एक साथ मिलता है।

अज्ञेय के संबंध मं कथाकार उदय प्रकाश कहते हैं कि ''आज हमारे समय में जब हम तमाम लघु अस्मिताओं का सर्वव्यापी उत्थान और आक्रमण देश रहे हैं। धर्म, जाति, नस्ल समूह, हित मूल्यों का क्षरण, सत्तालोलुपता और भ्रष्ट अतिचार आदि ने एक भयानक डरावना अंधेरा निर्मित किया है। ऐसे समय में अज्ञेय का व्यक्तित्व और उनका सृजन मुझे अंधेरे में जलती हुई कंदील की तरह दिखाई देता है। अज्ञेय प्रतिगामी और जड़-चेतन के संकीर्ण सत्ताओं के कारागार में एक सजायाफ्ता मुजरिम थे। लेकिन उनके कहानी संग्रह 'विपथगा, 'रोज' जैसी कहानियाँ, शेखर: एक जीवनी जैसा आत्मवृत्तांक परक उपन्यास, 'असाध्य वीणा' जैसी तमाम कविताएँ, दिमान' जैसी बौद्धिक पत्रिका का संपादन और अभिकल्पना की प्रतिभा ही नहीं 'कठिन काव्य का प्रेत' कहे जाने वाले आचार्य केशव दास पर लिखे उनके लेख जैसी तमाम रचनाएँ यह साक्ष्य देती हैं कि अगर हिंदी में दूसरा मुक्तिबोध नहीं हो सकता, दूसरा प्रेमचंद नहीं हो सकता तो दूसरा 'अज्ञेय' भी नहीं हो सकता। अज्ञेय नि:संदेह एक आधुनिक भारतीय बुद्धिजीवी और रचनाकार थे। उनके जन्मशती वर्ष में हमें उनके होने का उत्सव मनाना चाहिए। उनकी रचनाओं की ओर जाना आधुनिकता के महावतांत की ओर बढ़ा हुआ एक मुक्ति गामी कदम होगा।''[11]

अज्ञेय के लेखन की स्वतंत्रता और संबंध अज्ञेय के स्वातंत्र की अवधारणा समाज पर ही आकर समाप्त होती है। उनकी स्वतंत्र की मांग निजी होने के साथ ही साथ सामाजिक भी है और यह समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नही होनी चाहिए कि स्वतंत्रता के विविध रूपों की अनुभूति अज्ञेय के रचना संचार के केन्द्र में है। स्वतंत्रता, मम और ममेतर की पास्परिकता, समग्र परिवेश के साथ एक सृजनात्मक रिस्ते का बोध इन सबकी अनुभूति किसी न किसी रूप में अज्ञेय की कविताओं, उपन्यासों कहानियों में प्रचुरता से मिलते है। इन सबके बावजूद अज्ञेय को आत्मवादी एकान्तवादी, विशिष्टतावादी, कलावादी, व्यक्तिवादी, अहमवादी और भी न जाने क्या क्या कहा जाना हास्यापद होने के साथ ही साथ अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण भी है। अज्ञेय ने हिंदी की सभी

शेष पृष्ठ 86 पर

पृष्ठ 82 का शेष

लगभग सभी विधाओं को अपने विचारों व अभिव्यक्ति की अनूठी शैली से न केवल समृद्ध किया है बल्कि गौरवान्वित भी किया है।

अज्ञेय की रचनात्मकता व सृजनात्मक लेखन सदा ही हिंदी समाज के लिए प्रेरणा का श्रोत रहेगा और हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में समाज व हिंदी संसार सदा-सदैव उनका ऋणी रहेगा।

संदर्भ:-

1- कवि- दृष्टि (अज्ञेय संचयिता पत्रिका की भूमिका), नन्द किशोर आचार्य। पृ0 113
2- 'शाश्वती' (अज्ञेय की डायरी-1989), अज्ञेय संग्रह - अज्ञेय - पृष्ठ 38।
3- 'केंद्र ओर परिधि' (निबंध संग्रह) - अज्ञेय पृष्ठ - 179-80। नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण।
4- वही पृष्ठ - 162 ।
5- 'सत्रोत और सेतु' -(निबंध संग्रह-1978) अज्ञेय - पृष्ठ 119-120।
6- 'लेखक की स्वतंत्रता व स्वधर्म (लेख से) - निर्मल वर्मा - पृ0 475। 'अज्ञेय सहसर' (पुस्तक) सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण।
7- केन्द्र और परिधि -(निबंध) अज्ञेय पृष्ठ 239-40, 'अज्ञेय सहसर' (पुस्तक) सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण।
8- 'आत्मपरक' (पुस्तक) - अज्ञेय नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण।

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-2
15 July, 2013

अज्ञेय के लेखन में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अवधारणा

डॉ० प्रियदर्शनी
'एसिटेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं भारत अध्ययन विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

9- 'अंर्तमुखो और आत्म केंद्रित: नदी के द्वीप - नेमिचंद्र जैन, पृ0 249, 'अज्ञेय सहसर' (पुस्तक) सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण।
10- अज्ञेय : कवि कर्म का संकट-कृष्ण दत पालीवाल (पुस्तक)किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण।
11- उदय प्रकाश का अज्ञेय के संबंध में एक-www.Hindi Bogpost.Com ब्लॉग पोस्ट।

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN